अध्याय 1

शीतयुद्ध का दौर

परिचय

यह अध्याय पूरी पुस्तक के लिए एक पूर्वपीठिका प्रस्तुत करता है। शीतयुद्ध की समाप्ति को समकालीन विश्व राजनीति की शुरुआत की तरह देखा जाता है। यही समकालीन विश्व राजनीति इस पुस्तक की विषय-वस्तु है इसलिए यह उचित ही है कि हम कहानी की शुरुआत शीतयुद्ध की चर्चा से करें। इस अध्याय से यह साफ होगा कि किस तरह दो महाशक्तियों संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ का वर्चस्व शीतयुद्ध के केंद्र में था। यह अध्याय हमें विश्व के विभिन्न हिस्सों में शीतयुद्ध की समरस्थलियों तक भी ले जाएगा। इस अध्याय में गुटनिरपेक्ष आंदोलन पर इस दृष्टि से विचार किया गया है कि किस तरह इसने दोनों राष्ट्रों के दबदबे को चुनौती दी। गुटनिरपेक्ष देशों द्वारा 'नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था' स्थापित करने के प्रयास की चर्चा इस अध्याय में यह बताते हुए की गई है कि किस तरह इन देशों ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन को अपने आर्थिक विकास और राजनीतिक स्वतंत्रता का साधन बनाया। अध्याय के अंत में गुटनिरपेक्ष आंदोलन में भारत की भूमिका का मूल्यांकन किया गया है और यह प्रश्न पूछा गया है कि भारत के हितों की रक्षा में गुटनिरपेक्षता की नीति किस सीमा तक सफल रही।

दूसरे विश्वयुद्ध के अंत के परिणामस्वरूप दो महाशक्तियों का उदय हुआ। ऊपर के दो चित्र दूसरे विश्वयुद्ध में संयुक्त राज्य अमरीका और समाजवादी सोवियत गणराज्य की विजय को इंगित करते हैं।

1. *अमरीकी सैनिक 23 फरवरी, 1945 को आइवो जीमा, जापान की लड़ाई में अपना झंडा फहराते हुए।*
2. *समाजवादी सोवियत गणराज्य के सैनिक मई, 1945 में राइस्टैग बिल्डिंग (बर्लिन, जर्मनी) पर अपना झंडा फहराते हुए।*

चित्र 1 जो रोसेन्थाल (द एसोसिएट प्रैस) से और चित्र 2 येवगेनी खल्देई (ताश) से साभार

हम दुनिया की सैर कर रहे हैं। ऐसी जगहों पर जाना जहाँ बड़ी-बड़ी घटनाएँ हुईं हैं सचमुच बहुत मज़ेदार है।

यह नक्शा क्यूबा में तैनात की जा रही परमाणु मिसाइल की पहुँच का दायरा दिखाता है। नक्शे के नीचे ध्यान से देखिए। यह नक्शा संयुक्त राष्ट्र अमरीका की खुफिया एजेंसी सी.आई.ए. द्वारा क्यूबा मिसाइल संकट पर हुई गोपनीय बैठक में प्रयोग किया गया था।

स्रोतः *जॉन एफ. केनेडी प्रेसिडेंसिएल लाइब्रेरी एंड म्यूजियम*

क्यूबा का मिसाइल संकट

1961 की अप्रैल में सोवियत संघ के नेताओं को यह चिंता सता रही थी कि अमरीका साम्यवादियों द्वारा शासित क्यूबा पर आक्रमण कर देगा और इस देश के राष्ट्रपति फिदेल कास्त्रो का तख़्तापलट हो जाएगा। क्यूबा अमरीका के तट से लगा हुआ एक छोटा-सा द्वीपीय देश है। क्यूबा का जुड़ाव सोवियत संघ से था और सोवियत संघ उसे कूटनयिक तथा वित्तीय सहायता देता था। सोवियत संघ के नेता नीकिता ख्रुश्चेव ने क्यूबा को रूस के 'सैनिक अड्डे' के रूप में बदलने का फैसला किया। 1962 में ख्रुश्चेव ने क्यूबा में परमाणु मिसाइलें तैनात कर दीं। इन हथियारों की तैनाती से पहली बार अमरीका नजदीकी निशाने की सीमा में आ गया। हथियारों की इस तैनाती के बाद सोवियत संघ पहले की तुलना में अब अमरीका के मुख्य भू-भाग के लगभग दोगुने ठिकानों या शहरों पर हमला बोल सकता था।

क्यूबा में सोवियत संघ द्वारा परमाणु हथियार तैनात करने की भनक अमरीकियों को तीन हफ्ते बाद लगी। अमरीकी राष्ट्रपति जॉन एफ कैनेडी और उनके सलाहकार ऐसा कुछ भी करने से हिचकिचा रहे थे जिससे दोनों देशों के बीच परमाणु युद्ध शुरू हो जाए। लेकिन वे इस बात को लेकर दृढ़ थे कि ख्रुश्चेव क्यूबा से मिसाइलों और परमाणु हथियारों को हटा लें। कैनेडी ने आदेश दिया कि अमरीकी जंगी बेड़ों को आगे करके क्यूबा की तरफ जाने वाले सोवियत ज़हाजों को रोका जाए। इस तरह अमरीका सोवियत संघ को मामले के प्रति अपनी गंभीरता की चेतावनी देना चाहता था। ऐसी स्थिति में यह लगा कि युद्ध होकर रहेगा। इसी को 'क्यूबा मिसाइल संकट' के रूप में जाना गया। इस संघर्ष की आशंका ने पूरी दुनिया को बेचैन कर दिया। यह टकराव

कोई आम युद्ध नहीं होता। अंततः दोनों पक्षों ने युद्ध टालने का फैसला किया और दुनिया ने चैन की साँस ली। सोवियत संघ के ज़हाजों ने या तो अपनी गति धीमी कर ली या वापसी का रुख कर लिया।

'क्यूबा मिसाइल संकट' शीतयुद्ध का चरम बिंदु था। शीतयुद्ध सोवियत संघ और अमरीका तथा इनके साथी देशों के बीच प्रतिद्वंद्विता, तनाव और संघर्ष की एक शृंखला के रूप में जारी रहा। सौभाग्य से इन तनावों और संघर्षों ने युद्ध का रूप नहीं लिया यानी इन दो देशों के बीच कोई पूर्णव्यापी रक्तरंजित युद्ध नहीं छिड़ा। विभिन्न इलाकों में युद्ध हुए; दोनों महाशक्तियाँ और उनके साथी देश इन युद्धों में संलग्न रहे; वे क्षेत्र-विशेष के अपने साथी देश के मददगार बने लेकिन दुनिया तीसरे विश्वयुद्ध से बच गई।

शीतयुद्ध सिर्फ जोर-आजमाइश, सैनिक गठबंधन अथवा शक्ति-संतुलन का मामला भर नहीं था बल्कि इसके साथ-साथ विचारधारा के स्तर पर भी एक वास्तविक संघर्ष जारी था। विचारधारा की लड़ाई इस बात को लेकर थी कि पूरे विश्व में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन को सूत्रबद्ध करने का सबसे बेहतर सिद्धांत कौन-सा है। पश्चिमी गठबंधन का अगुआ अमरीका था और यह गुट उदारवादी लोकतंत्र तथा पूँजीवाद का हामी था। पूर्वी गठबंधन का अगुवा सोवियत संघ था और इस गुट की प्रतिबद्धता समाजवाद तथा साम्यवाद के लिए थी। आप इन विचारधाराओं के बारे में कक्षा ग्यारह में पढ़ चुके हैं।

शीतयुद्ध क्या है?

दूसरे विश्वयुद्ध का अंत समकालीन विश्व-राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। सन् 1945 में मित्र-राष्ट्रों और धुरी-राष्ट्रों के बीच दूसरे विश्व युद्ध (1939-1945) की समाप्ति हो गई। मित्र-राष्ट्रों की अगुआई अमरीका, सोवियत संघ, ब्रिटेन और फ्रांस कर रहे थे। धुरी-राष्ट्रों की अगुआई जर्मनी, इटली और जापान के हाथ में थी। इस युद्ध में विश्व के लगभग सभी ताकतवर देश शामिल थे। यह युद्ध यूरोप से बाहर के इलाके में भी फैला और इसका विस्तार दक्षिण-पूर्व एशिया, चीन, बर्मा (अब म्यांमार) तथा भारत के पूर्वोत्तर के कुछ हिस्सों तक था। इस युद्ध में बड़े पैमाने पर जनहानि और धनहानि हुई। 1914 से 1918 के बीच हुए पहले विश्वयुद्ध ने विश्व को दहला दिया था, लेकिन दूसरा विश्वयुद्ध इससे भी ज़्यादा भारी पड़ा।

दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति से ही शीतयुद्ध की शुरुआत हुई। अगस्त 1945 में अमरीका ने जापान के दो शहर हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराये और जापान को घुटने टेकने पड़े। इसके बाद दूसरे विश्वयुद्ध का अंत हुआ। परमाणु बम गिराने के अमरीकी फैसले के आलोचकों का तर्क है कि अमरीका इस बात को जानता था कि जापान आत्मसमर्पण करने वाला है। ऐसे में बम गिराना गैर-ज़रूरी था। इन आलोचकों का मानना है कि अमरीका की इस कार्रवाई का लक्ष्य सोवियत संघ को एशिया तथा अन्य जगहों पर सैन्य और राजनीतिक लाभ उठाने से रोकना था। वह सोवियत संघ के सामने यह भी जाहिर करना चाहता था कि अमरीका ही सबसे बड़ी ताकत है। अमरीका के समर्थकों का तर्क था कि युद्ध को जल्दी से जल्दी समाप्त करने तथा अमरीका और साथी राष्ट्रों की आगे की जनहानि को रोकने के लिए परमाणु बम गिराना ज़रूरी था। विश्वयुद्ध की समाप्ति के कारण कुछ भी हों, लेकिन इसका परिणाम

बहुत पास फिर भी बहुत दूर। मैंने नक्शे में देखा और मुझे यकीन नहीं हुआ कि महाशक्ति के इतने पास होने के बाद भी क्यूबा में सालों-साल से अमरीका विरोधी सरकार कायम है।

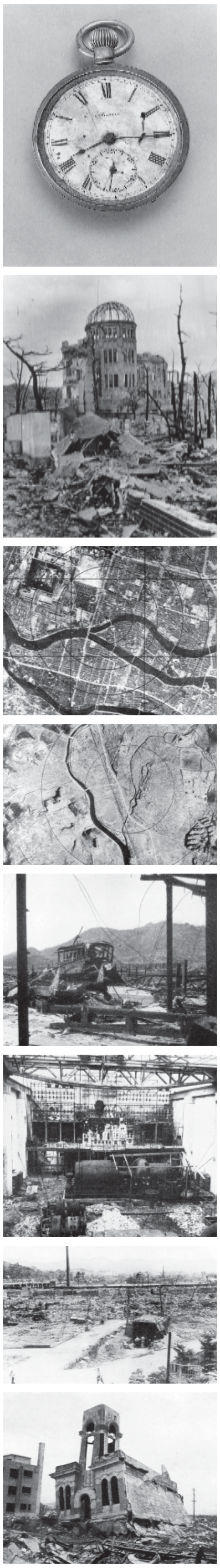

यही हुआ कि वैश्विक राजनीति के मंच पर दो महाशक्तियों का उदय हो गया। जर्मनी और जापान हार चुके थे और यूरोप तथा शेष विश्व विध्वंस की मार झेल रहे थे। अब अमरीका और सोवियत संघ विश्व की सबसे बड़ी शक्ति थे। इनके पास इतनी क्षमता थी कि विश्व की किसी भी घटना को प्रभावित कर सकें। अमरीका और सोवियत संघ का महाशक्ति बनने की होड़ में एक-दूसरे के मुकाबले खड़ा होना शीतयुद्ध का कारण बना। शीतयुद्ध शुरू होने के पीछे यह समझ भी काम कर रही थी कि परमाणु बम से होने वाले विध्वंस की मार झेलना किसी भी राष्ट्र के बूते की बात नहीं। यह एक सीधा-सादा लेकिन असरदार तर्क था। जब दोनों महाशक्तियों के पास इतनी क्षमता के परमाणु हथियार हों कि वे एक-दूसरे को असहनीय क्षति पहुँचा सकें तो ऐसे में दोनों के बीच रक्तरंजित युद्ध होने की संभावना कम रह जाती है। उकसावे के बावजूद कोई भी पक्ष युद्ध का जोखिम

ये तस्वीरें उस विध्वंस को दिखाती हैं जो अमरीका द्वारा हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराये गये परमाणु बमों के कारण हुआ। इन बमों को 'लिटिल ब्वॉय' और 'फैटमैन' के गुप्तनाम दिए गए। महाशक्तियों के पास आज परमाणु हथियारों का जो ज़खीरा है उसकी तुलना में ये बम बहुत छोटे थे। ये बम क्रमश: 15 और 21 किलोटन क्षमता के थे। इतनी कम क्षमता के परमाणु बमों ने भी अकल्पनीय विध्वंस किया। 1950 के दशक की शुरुआत में ही संयुक्त राष्ट्र अमरीका और सोवियत संघ ऐसे परमाणु-बमों का परीक्षण कर रहे थे जिनकी क्षमता 10 से 15 हजार किलोटन थी। दूसरे शब्दों में ये बम हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराये गये परमाणु बमों की तुलना में हजारों गुना ज्यादा विध्वंसक थे। शीतयुद्ध के दौरान दोनों ही महाशक्तियों के पास इस तरह के हज़ारों हथियार थे। जरा कल्पना कीजिए कि ये हथियार दुनिया भर में क्या तबाही मचा सकते थे।

मोल लेना नहीं चाहेगा क्योंकि युद्ध से राजनीतिक फायदा चाहे किसी को भी हो, लेकिन इससे होने वाले विध्वंस को औचित्यपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता।

परमाणु युद्ध की सूरत में दोनों पक्षों को इतना नुकसान उठाना पड़ेगा कि उनमें से विजेता कौन है – यह तय करना भी असंभव होगा। अगर कोई अपने शत्रु पर आक्रमण करके उसके परमाणु हथियारों को नाकाम करने की कोशिश करता है तब भी दूसरे के पास उसे बर्बाद करने लायक हथियार बच जाएंगे। इसे 'अपरोध' (रोक और संतुलन) का तर्क कहा गया। दोनों ही पक्षों के पास एक-दूसरे के मुकाबले और परस्पर नुकसान पहुँचाने की इतनी क्षमता होती है कि कोई भी पक्ष युद्ध का खतरा नहीं उठाना चाहता। इस तरह, महाशक्तियों के बीच गहन प्रतिद्वन्द्विता होने के बावजूद शीतयुद्ध रक्तरंजित युद्ध का रूप नहीं ले सका। इसकी तासीर ठंडी रही। पारस्परिक 'अपरोध' की स्थिति ने युद्ध तो नहीं होने दिया, लेकिन यह स्थिति पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता को न रोक सकी।

शीतयुद्ध की प्रमुख सैन्य विशेषताओं पर ध्यान दें। इसमें दो महाशक्तियाँ और उनके अपने-अपने गुट थे। इन परस्पर प्रतिद्वंद्वी गुटों में शामिल देशों से अपेक्षा थी कि वे तर्कसंगत और जिम्मेदारी भरा व्यवहार करेंगे। इन देशों को एक विशेष अर्थ में तर्कसंगत और जिम्मेदारी भरा बरताव करना था। परस्पर विरोधी गुटों में शामिल देशों को समझना था कि आपसी युद्ध में जोखिम है क्योंकि संभव है कि इसकी वजह से दो महाशक्तियों के बीच युद्ध ठन जाए। जब दो महाशक्तियों और उनकी अगुआई वाले गुटों के बीच 'पारस्परिक अपरोध' का संबंध हो तो युद्ध लड़ना दोनों के लिए विध्वंसक साबित होगा। इस संदर्भ में जिम्मेदारी

का मतलब था संयम से काम लेना और तीसरे विश्वयुद्ध के जोखिम से बचना। शीतयुद्ध ने समूची मनुष्य जाति पर मंडराते खतरे को जैसे-तैसे संभाल लिया।

दो-ध्रुवीय विश्व का आरंभ

दोनों महाशक्तियाँ विश्व के विभिन्न हिस्सों पर अपने प्रभाव का दायरा बढ़ाने के लिए तुली हुई थीं। दुनिया दो गुटों के बीच बहुत स्पष्ट रूप से बँट गई थी। ऐसे में किसी मुल्क के लिए एक रास्ता यह था कि वह अपनी सुरक्षा के लिए किसी एक महाशक्ति के साथ जुड़ा रहे और दूसरी महाशक्ति तथा उसके गुट के देशों के प्रभाव से बच सके।

परस्पर विरोधी गुटों के अपेक्षाकृत छोटे देशों ने महाशक्तियों के साथ अपने-अपने जुड़ाव का इस्तेमाल निजी हित में किया। इन देशों को स्थानीय प्रतिद्वंद्वी देश के खिलाफ सुरक्षा का वायदा मिला, हथियार और आर्थिक मदद मिली। इन देशों की अपने पड़ोसी देशों से होड़ थी। महाशक्तियों के नेतृत्व में गठबंधन की व्यवस्था से पूरी दुनिया के दो खेमों में बंट जाने का खतरा पैदा हो गया। यह विभाजन सबसे पहले यूरोप में हुआ। पश्चिमी यूरोप के अधिकतर देशों ने अमरीका का पक्ष लिया जबकि पूर्वी यूरोप सोवियत खेमे में शामिल हो गया इसीलिए ये खेमे पश्चिमी और पूर्वी गठबंधन भी कहलाते हैं।

पश्चिमी गठबंधन ने स्वयं को एक संगठन का रूप दिया। अप्रैल 1949 में उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) की स्थापना हुई जिसमें 12 देश शामिल थे। इस संगठन ने घोषणा की

1. प्रत्येक प्रतिस्पर्धी गुट से कम से कम तीन देशों की पहचान करें।

2. अध्याय चार में दिए गए यूरोपीय संघ के मानचित्र को देखें और उन चार देशों को पहचाने जो पहले 'वारसा संधि' के सदस्य थे और अब यूरोपीय संघ के सदस्य हैं।

3. इस मानचित्र की तुलना यूरोपीय संघ के मानचित्र अथवा विश्व के मानचित्र से करें। इस तुलना के बाद क्या आप तीन ऐसे नये देशों की पहचान कर सकते हैं जो शीतयुद्ध के बाद अस्तित्व में आए?

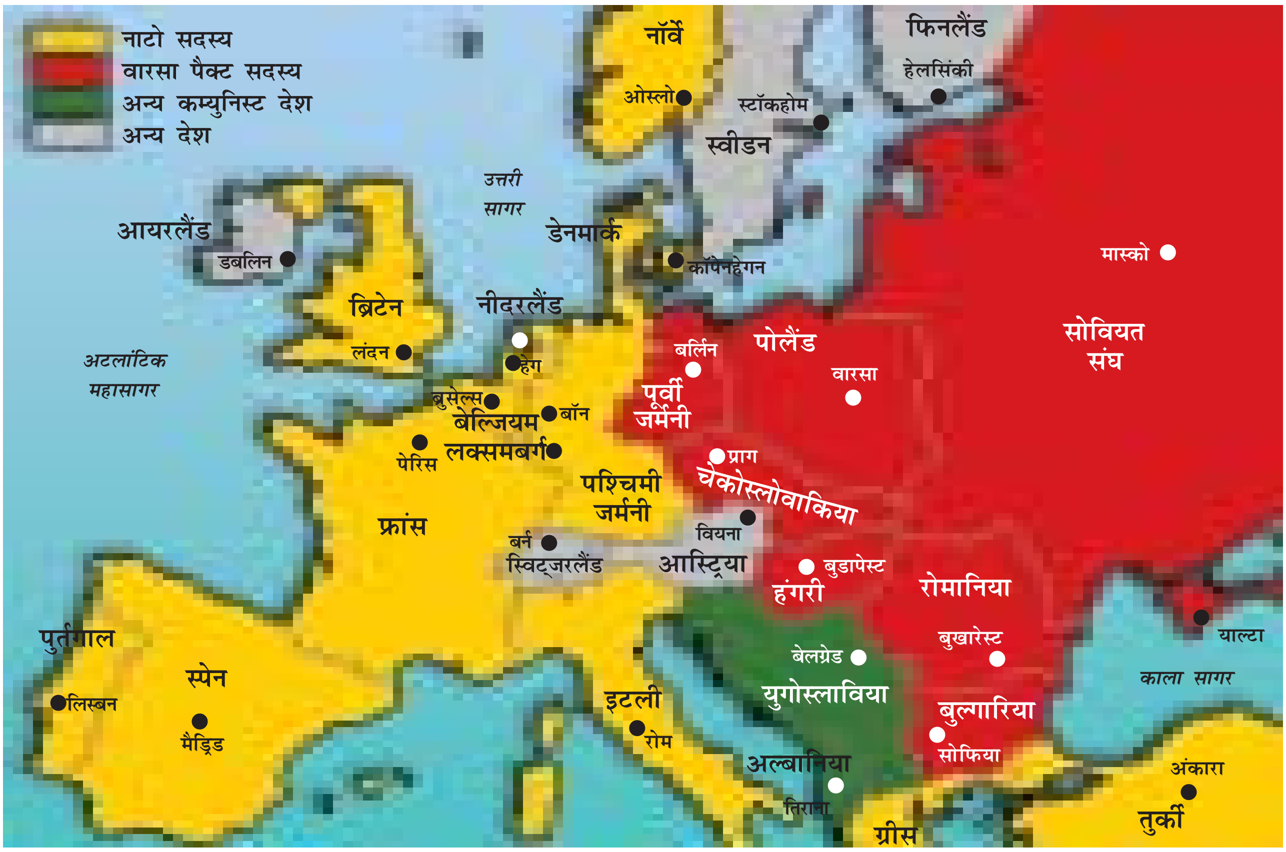

शीतयुद्ध के दौरान यूरोप दो प्रतिद्वंद्वी गठबंधनों में बँट गया था। मानचित्र में इस तथ्य को दिखाया गया है।

निम्नलिखित तालिका में तीन-तीन देशों के नाम उनके गुटों को ध्यान में रखकर लिखें –

पूंजीवादी गुट

____

____

____

साम्यवादी गुट

____

____

____

गुटनिरपेक्ष आंदोलन

____

____

____

कि उत्तरी अमरीका अथवा यूरोप के इन देशों में से किसी एक पर भी हमला होता है तो उसे 'संगठन' में शामिल सभी देश अपने ऊपर हमला मानेंगे। 'नाटो' में शामिल हर देश एक-दूसरे की मदद करेगा। इसी प्रकार के पूर्वी गठबंधन को 'वारसा संधि' के नाम से जाना जाता है। इसकी अगुआई सोवियत संघ ने की। इसकी स्थापना सन् 1955 में हुई थी और इसका मुख्य काम था 'नाटो' में शामिल देशों का यूरोप में मुकाबला करना।

शीतयुद्ध के दौरान अंतर्राष्ट्रीय गठबंधनों का निर्धारण महाशक्तियों की ज़रूरतों और छोटे देशों के लाभ-हानि के गणित से होता था। जैसाकि ऊपर बताया गया है, महाशक्तियों के बीच तनातनी का मुख्य अखाड़ा यूरोप बना। कुछेक मामलों में यह भी हुआ कि महाशक्तियों ने अपने-अपने गुट में शामिल करने के लिए कुछ देशों पर अपनी ताकत का इस्तेमाल किया। पूर्वी यूरोप में सोवियत संघ की दखलंदाजी इसका उदाहरण है। सोवियत संघ ने पूर्वी यूरोप में अपने प्रभाव का इस्तेमाल किया। इस क्षेत्र के देशों में सोवियत संघ की सेना की व्यापक उपस्थिति ने यह सुनिश्चित करने के लिए अपना प्रभाव जमाया कि यूरोप का पूरा पूर्वी हिस्सा सोवियत संघ के दबदबे में रहे। पूर्वी और दक्षिण-पूर्व एशिया तथा पश्चिम एशिया में अमरीका ने गठबंधन का तरीका अपनाया। इन गठबंधनों को दक्षिण-पूर्व एशियाई संधि संगठन (SEATO) और केंद्रीय संधि संगठन (CENTO) कहा जाता है। इसके ज़वाब में सोवियत संघ तथा साम्यवादी चीन ने इस क्षेत्र के देशों मसलन उत्तरी वियतनाम, उत्तरी कोरिया और इराक के साथ अपने सम्बन्ध मजबूत किए।

शीतयुद्ध के कारण विश्व के सामने दो गुटों के बीच बँट जाने का खतरा पैदा हो गया था। ऐसी स्थिति में औपनिवेशिक शासन, मसलन ब्रिटेन और फ्रांस के चंगुल से मुक्त हुए नव स्वतंत्र देशों को चिंता हुई कि कहीं वे अपनी इस आज़ादी को पाने के साथ खो न बैठें। गठबंधन में भेद पैदा हुए और बड़ी जल्दी उनमें दरार पड़ी। साम्यवादी चीन की

1950 के दशक के उत्तरार्द्ध में सोवियत संघ से अनबन हो गई। सन् 1969 में इन दोनों के बीच एक भू-भाग पर आधिपत्य को लेकर छोटा-सा युद्ध भी हुआ। इस दौर की एक महत्त्वपूर्ण घटना 'गुटनिरपेक्ष आंदोलन' का विकास है। इस आंदोलन ने नव-स्वतंत्र राष्ट्रों को दो-ध्रुवीय विश्व की गुटबाजी से अलग रहने का मौका दिया।

आप यह सवाल पूछ सकते हैं कि आख़िर महाशक्तियों को अपना गुट बनाने की ज़रूरत क्यों पड़ी। आख़िर अपने परमाणु हथियारों और अपनी स्थायी सेना के बूते महाशक्तियाँ इतनी ताकतवर थीं कि एशिया तथा अफ़्रीका और यहाँ तक कि यूरोप के अधिकांश छोटे देशों की साझी शक्ति का भी उनसे कोई मुकाबला नहीं था। लेकिन, हमें यह समझने की ज़रूरत है कि छोटे देश निम्न कारणों से महाशक्तियों के बड़े काम के थे –

(क) महत्त्वपूर्ण संसाधनों (जैसे तेल और खनिज),

(ख) भू-क्षेत्र (ताकि यहाँ से महाशक्तियाँ अपने हथियारों और सेना का संचालन कर सकें),

(ग) सैनिक ठिकाने (जहाँ से महाशक्तियाँ एक-दूसरे की जासूसी कर सकें) और

(घ) आर्थिक मदद (जिसमें गठबंधन में शामिल बहुत से छोटे-छोटे देश सैन्य-खर्च वहन करने में मददगार हो सकते थे)।

ये ऐसे कारण थे जो छोटे देशों को महाशक्तियों के लिए ज़रूरी बना देते थे। विचारधारा के कारण भी ये देश महत्त्वपूर्ण थे। गुटों में शामिल देशों की निष्ठा से यह संकेत मिलता था कि महाशक्तियाँ विचारों का पारस्परिक युद्ध भी जीत रही हैं। गुट में शामिल हो रहे देशों के आधार पर वे सोच सकती थीं कि उदारवादी लोकतंत्र और पूंजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद से कहीं बेहतर है अथवा समाजवाद और साम्यवाद, उदारवादी लोकतंत्र और पूंजीवाद की अपेक्षा बेहतर है।

शीतयुद्ध के दायरे

शीतयुद्ध के दौरान अनेक संकट सामने आये। क्यूबा के जिस मिसाइल संकट से हमने इस अध्याय की शुरुआत की, वह इनमें से एक था। शीतयुद्ध के दौरान खूनी लड़ाइयाँ भी हुईं, लेकिन यहाँ ध्यान देने की बात यह भी है कि इन संकटों और लड़ाइयों की परिणति तीसरे विश्वयुद्ध के रूप में नहीं हुई। दोनों महाशक्तियाँ कोरिया (1950-1953), बर्लिन (1958-1962), कांगो (1960 के दशक की शुरुआत) और कई अन्य जगहों पर सीधे-सीधे मुठभेड़ की स्थिति में आ चुकी थीं। संकट गहराता गया क्योंकि दोनों में से कोई भी पक्ष पीछे हटने के लिए तैयार नहीं था। जब हम शीतयुद्ध के दायरों की बात करते हैं तो हमारा आशय ऐसे क्षेत्रों से होता है जहाँ विरोधी खेमों में बँटे देशों के बीच संकट के अवसर आये, युद्ध हुए या इनके होने की संभावना बनी, लेकिन बातें एक हद से ज्यादा नहीं बढ़ीं। कोरिया, वियतनाम और अफ़गानिस्तान जैसे कुछ क्षेत्रों में व्यापक जनहानि हुई, लेकिन विश्व परमाणु युद्ध से बचा रहा और वैमनस्य विश्वव्यापी नहीं हो पाया। कई बार ऐसे अवसर आए जब दोनों महाशक्तियों के बीच राजनयिक संवाद जारी नहीं रह पाया और इससे दोनों के बीच ग़लतफहमियाँ बढ़ीं।

ऐसे कई मौके आए जब शीतयुद्ध के संघर्षों और कुछ गहन संकटों को टालने में दोनों गुटों से बाहर के देशों ने कारगर भूमिका निभायी। इस संदर्भ में गुटनिरपेक्ष देशों की भूमिका को नहीं भुलाया जा सकता। गुटनिरपेक्ष

उत्तरी और दक्षिणी कोरिया अभी तक क्यों विभाजित हैं जबकि शीतयुद्ध के दौर के बाकी विभाजन मिट गए हैं? क्या कोरिया के लोग चाहते हैं कि विभाजन बना रहे?

खुद करें, खुद सीखें

विश्व के मानचित्र पर शीतयुद्ध के प्रमुख घटनास्थलों को चिह्नित करें।

WEB COPY ©BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

शीतयुद्ध का घटनाक्रम

1947	:	साम्यवाद को रोकने के बारे में अमरीकी राष्ट्रपति ट्रूमैन का सिद्धांत।
1947-52	:	मार्शल प्लान – पश्चिमी यूरोप के पुनर्निर्माण में अमरीका की सहायता।
1948-49	:	सोवियत संघ द्वारा बर्लिन की घेराबंदी। अमरीका और उसके साथी देशों ने पश्चिमी बर्लिन के नागरिकों को जो आपूर्ति भेजी थी उसे सोवियत संघ ने अपने विमानों से उठा लिया।
1950-53	:	कोरियाई युद्ध – 38वीं समानांतर रेखा के द्वारा कोरिया का विभाजन।
1954	:	वियतनामियों के हाथों दायन बीयन फू में फ्रांस की हार; जेनेवा समझौते पर हस्ताक्षर; 17वीं समानांतर रेखा द्वारा वियतनाम का विभाजन; सिएटो (SEATO) का गठन।
1954-75	:	वियतनाम में अमरीकी हस्तक्षेप।
1955	:	बगदाद समझौते पर हस्ताक्षर; बाद में इसे सेन्टो (CENTO) के नाम से जाना गया।
1956	:	हंगरी में सोवियत संघ का हस्तक्षेप।
1961	:	क्यूबा में अमरीका द्वारा प्रायोजित 'बे ऑफ पिग्स' आक्रमण
1961	:	बर्लिन-दीवार खड़ी की गई।
1962	:	क्यूबा का मिसाइल संकट।
1965	:	डोमिनिकन रिपब्लिक में अमरीकी हस्तक्षेप।
1968	:	चेकोस्लोवाकिया में सोवियत हस्तक्षेप।
1972	:	अमरीकी राष्ट्रपति निक्सन का चीन दौरा।
1978-89	:	कंबोडिया में वियतनाम का हस्तक्षेप।
1979-89	:	अफ़गानिस्तान में सोवियत संघ का हस्तक्षेप
1985	:	गोर्बाचेव सोवियत संघ के राष्ट्रपति बने; सुधार की प्रक्रिया आरंभ की।
1989	:	बर्लिन-दीवार गिरी; पूर्वी यूरोप की सरकारों के विरुद्ध लोगों का प्रदर्शन।
1990	:	जर्मनी का एकीकरण।
1991	:	सोवियत संघ का विघटन; शीतयुद्ध की समाप्ति।

आंदोलन के प्रमुख नेताओं में एक जवाहरलाल नेहरू थे। नेहरू ने उत्तरी और दक्षिणी कोरिया के बीच मध्यस्थता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। कांगो संकट में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव ने प्रमुख मध्यस्थ की भूमिका निभाई। अंततः यह बात उभरकर सामने आती है कि महाशक्तियों ने समझ लिया था कि युद्ध को हर हालत में टालना ज़रूरी है। इसी समझ के कारण दोनों महाशक्तियों ने संयम बरता और अंतर्राष्ट्रीय मामलों में जिम्मेवारी भरा बरताव किया। शीतयुद्ध एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र की तरफ सरकता गया और इसमें संयम का तर्क ही काम कर रहा था।

हालाँकि शीतयुद्ध के दौरान दोनों ही गठबंधनों के बीच प्रतिद्वंदिता समाप्त नहीं हुई थी। इसी कारण एक-दूसरे के प्रति शंका की हालत में दोनों गुटों ने भरपूर हथियार जमा किए और लगातार युद्ध के लिए तैयारी करते रहे। हथियारों के बड़े ज़खीरे को युद्ध से बचे रहने के लिए ज़रूरी माना गया।

दोनों देश लगातार इस बात को समझ रहे थे कि संयम के बावजूद युद्ध हो सकता है। दोनों पक्षों में से कोई भी दूसरे के हथियारों की संख्या को लेकर ग़लत अनुमान लगा सकता था। दोनों गुट एक-दूसरे की मंशा को समझने में भूल कर सकते थे। इसके अतिरिक्त सवाल यह भी था कि कोई परमाणु दुर्घटना हो गई तो क्या होगा? अगर ग़लती से कोई परमाणु हथियार चल जाए या कोई सैनिक शरारतन युद्ध शुरू करने के इरादे से कोई हथियार चला दे तो क्या होगा? अगर परमाणु हथियार के कारण कोई दुर्घटना हो जाए तो क्या होगा? ऐसी दुर्घटना का शिकार हुए देश के नेताओं को कैसे पता चलेगा कि यह शत्रु का षड्यंत्र नहीं अथवा दूसरी तरफ से कोई मिसाइल नहीं दागी गई है, बल्कि यह महज एक दुर्घटना है?

ये दोनों कार्टून मशहूर भारतीय कार्टूनिस्ट कुट्टी ने बनाए हैं। इनमें शीतयुद्ध को लेकर भारत के नज़रिए को चित्रित किया गया है। पहला कार्टून उस समय का है जब समाजवादी सोवियत गणराज्य को अंधेरे में रखकर अमरीका ने चीन के साथ गुपचुप दोस्ती गांठी। इस कार्टून में दिखाए गए किरदारों के बारे में और जानकारी जुटाइए। दूसरे कार्टून में वियतनाम में अमरीकी दुस्साहस को चित्रित किया गया है। वियतनाम-युद्ध के बारे में और जानकारी जुटाएँ।

राजनीतिक बसंत – चीन के हाथों में अमरीका का हाथ

कुट्टी, लॉफिंग विद कुट्टी

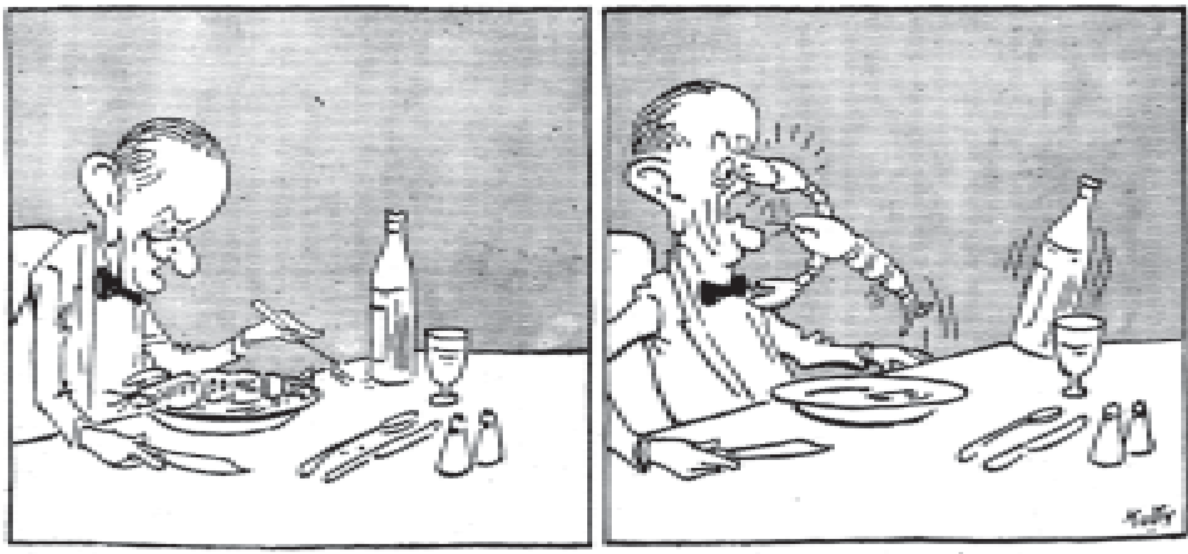

एक नज़र इधर भी – अमरीकी राष्ट्रपति जॉनसन वियतनाम के मसले पर बड़े कष्ट में जान पड़ते हैं।

कुट्टी, लॉफिंग विद कुट्टी

गुटनिरपेक्ष आंदोलन के संस्थापक

जोसेफ ब्रॉज़ टीटो
(1892-1980)
युगोस्लाविया के शासक (1940-80); दूसरे विश्व युद्ध में जर्मनी के खिलाफ लड़े; साम्यवादी; सोवियत संघ से दूरी बनाए रखी। युगोस्लाविया में एकता कायम की।

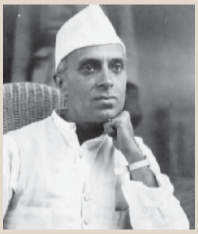

जवाहरलाल नेहरू
(1889-1964)
भारत के पहले प्रधानमंत्री (1947-64); एशियाई एकता, अनौपनिवेशीकरण और निरस्त्रीकरण के प्रयास किए और विश्व-शांति के लिए शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की वकालत की।

इस कारण, समय रहते अमरीका और सोवियत संघ ने कुछेक परमाण्विक और अन्य हथियारों को सीमित या समाप्त करने के लिए आपस में सहयोग करने का फैसला किया। दोनों महाशक्तियों ने फैसला किया कि 'अस्त्र-नियंत्रण' द्वारा हथियारों की होड़ पर लगाम कसी जा सकती है और उसमें स्थायी संतुलन लाया जा सकता है। ऐसे प्रयास की शुरुआत सन् 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में हुई और एक दशक के भीतर दोनों पक्षों ने तीन अहम समझौतों पर दस्तख़त किए। ये संधियाँ थीं परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि, परमाणु अप्रसार संधि और परमाणु प्रक्षेपास्त्र परिसीमन संधि (एंटी बैलेस्टिक मिसाइल ट्रीटी)। इसके बाद महाशक्तियों ने 'अस्त्र-परिसीमन' के लिए वार्ताओं के कई दौर किए और हथियारों पर अंकुश रखने के लिए अनेक संधियाँ कीं।

दो-ध्रुवीयता को चुनौती – गुटनिरपेक्षता

हम देख चुके हैं कि किस तरह शीतयुद्ध की वज़ह से विश्व दो प्रतिद्वंद्वी गुटों में बँट रहा था। इसी संदर्भ में गुटनिरपेक्षता ने एशिया, अफ्रीका और लातिनी अमरीका के नव-स्वतंत्र देशों को एक तीसरा विकल्प दिया। यह विकल्प था दोनों महाशक्तियों के गुटों से अलग रहने का।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन की जड़ में युगोस्लाविया के जोसेफ ब्रॉज़ टीटो, भारत के जवाहरलाल नेहरू और मिस्र के गमाल अब्दुल नासिर की दोस्ती थी। इन तीनों ने सन् 1956 में एक सफल बैठक की। इंडोनेशिया के सुकर्णो और घाना के वामे एनक्रूमा ने इनका जोरदार समर्थन किया। ये पाँच नेता गुटनिरपेक्ष आंदोलन के संस्थापक कहलाए। पहला गुटनिरपेक्ष सम्मेलन सन् 1961 में बेलग्रेड में हुआ। यह सम्मेलन कम से कम तीन बातों की परिणति था –

(क) इन पाँच देशों के बीच सहयोग,

(ख) शीतयुद्ध का प्रसार और इसके बढ़ते हुए दायरे, और

(ग) अंतर्राष्ट्रीय फलक पर बहुत से नव-स्वतंत्र अफ्रीकी देशों का नाटकीय उदय। 1960 तक संयुक्त राष्ट्रसंघ में 16 नये अफ्रीकी देश बतौर सदस्य शामिल हो चुके थे।

पहले गुटननिरपेक्ष-सम्मेलन में 25 सदस्य-देश शामिल हुए। समय गुजरने के साथ गुटनिरपेक्ष आंदोलन की सदस्य संख्या बढ़ती गई। 2006 में हवाना (क्यूबा) में हुए 14वें सम्मेलन में 116 सदस्य-देश और 15 पर्यवेक्षक देश शामिल हुए।

जैसे-जैसे गुटनिरपेक्ष आंदोलन एक लोकप्रिय अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में बढ़ता गया वैसे-वैसे इसमें विभिन्न राजनीतिक प्रणाली और अलग-अलग हितों के देश शामिल होते गए। इससे गुटनिरपेक्ष आंदोलन के मूल स्वरूप में बदलाव आया। इसी कारण गुटनिरपेक्ष आंदोलन की सटीक परिभाषा कर पाना कुछ मुश्किल है। वास्तव में यह आंदोलन है क्या? दरअसल यह आंदोलन क्या नहीं है- यह बताकर इसकी परिभाषा करना ज्यादा सरल है। यह महाशक्तियों के गुटों में शामिल न होने का आंदोलन है।

महाशक्तियों के गुटों से अलग रहने की इस नीति का मतलब यह नहीं है कि इस आंदोलन से जुड़े देश अपने को अंतर्राष्ट्रीय मामलों से अलग-थलग रखते हैं या तटस्थता का पालन करते हैं। गुटनिरपेक्षता का मतलब

© RSTDPC WEB COPY NOT TO BE PUBLISHED

पृथकतावाद नहीं। पृथकतावाद का अर्थ होता है अपने को अंतर्राष्ट्रीय मामलों से काटकर रखना। 1787 में अमरीका में स्वतंत्रता की लड़ाई हुई थी। इसके बाद से पहले विश्वयुद्ध की शुरुआत तक अमरीका ने अपने को अंतर्राष्ट्रीय मामलों से अलग रखा। उसने पृथकतावाद की विदेश-नीति अपनाई थी। इसके विपरीत गुटनिरपेक्ष देशों ने, जिसमें भारत भी शामिल है, शांति और स्थिरता बनाए रखने के लिए प्रतिद्वंद्वी गुटों के बीच मध्यस्थता में सक्रिय भूमिका निभाई। गुटनिरपेक्ष देशों की ताकत की जड़ उनकी आपसी एकता और महाशक्तियों द्वारा अपने-अपने खेमे में शामिल करने की पुरजोर कोशिशों के बावजूद ऐसे किसी खेमे में शामिल न होने के उनके संकल्प में है।

गुटनिरपेक्षता का अर्थ तटस्थता का धर्म निभाना भी नहीं है। तटस्थता का अर्थ होता है मुख्यत: युद्ध में शामिल न होने की नीति का पालन करना। तटस्थता की नीति का पालन करने वाले देश के लिए यह ज़रूरी नहीं कि वह युद्ध को समाप्त करने में मदद करे। ऐसे देश युद्ध में संलग्न नहीं होते और न ही युद्ध के सही-ग़लत होने के बारे में उनका कोई पक्ष होता है। दरअसल कई कारणों से गुटनिरपेक्ष देश, जिसमें भारत भी शामिल है, युद्ध में शामिल हुए हैं। इन देशों ने दूसरे देशों के बीच युद्ध को होने से टालने के लिए काम किया है और हो रहे युद्ध के अंत के लिए प्रयास किए हैं।

नव अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था

गुटनिरपेक्ष देश शीतयुद्ध के दौरान महज मध्यस्थता करने वाले देश भर नहीं थे। गुटनिरपेक्ष आंदोलन में शामिल अधिकांश देशों को 'अल्प विकसित देश' का दर्जा मिला था। इन देशों के सामने मुख्य चुनौती आर्थिक रूप से और ज्यादा विकास करने तथा अपनी जनता को ग़रीबी से उबारने की थी। नव-स्वतंत्र देशों की आज़ादी के लिहाज़ से भी आर्थिक विकास महत्त्वपूर्ण था। बग़ैर टिकाऊ विकास के कोई देश सही मायनों में आज़ाद नहीं रह सकता। उसे धनी देशों पर निर्भर रहना पड़ता। इसमें वह उपनिवेशक देश भी हो सकता था जिससे राजनीतिक आज़ादी हासिल की गई।

इसी समझ से नव अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की धारणा का जन्म हुआ। 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ के व्यापार और विकास से संबंधित सम्मेलन (यूनाइटेड नेशंस कॉनफ्रेंस ऑन ट्रेड एंड डेवलपमेंट- अंकटाड) में 'टुवार्ड्स अ न्यू ट्रेड पॉलिसी फॉर डेवलपमेंट' शीर्षक से एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। इस रिपोर्ट में वैश्विक व्यापार-प्रणाली में सुधार का प्रस्ताव किया गया था। इस रिपोर्ट में कहा गया था कि सुधारों से –

(क) अल्प विकसित देशों को अपने उन प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण प्राप्त होगा जिनका दोहन पश्चिम के विकसित देश करते हैं;

(ख) अल्प विकसित देशों की पहुँच पश्चिमी देशों के बाज़ार तक होगी; वे अपना सामान बेच सकेंगे और इस तरह ग़रीब देशों के लिए यह व्यापार फायदेमंद होगा;

(ग) पश्चिमी देशों से मंगायी जा रही प्रौद्योगिकी की लागत कम होगी और

(घ) अल्प विकसित देशों की अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थानों में भूमिका बढ़ेगी।

© BSTBPC WEB COPY, NOT TO BE PUBLISHED

गुटनिरपेक्ष आंदोलन के संस्थापक

गमाल अब्दुल नासिर
(1918-70)
सन् 1970 तक मिस्र के शासक। अरब राष्ट्रवाद, समाजवाद और साम्राज्यवाद-विरोध के लिए प्रतिबद्ध। स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण किया। इसकी वजह से सन् 1956 में अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष हुआ।

सुकर्णो
(1901-1970)
इंडोनेशिया के पहले राष्ट्रपति (1945-65); स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व; समाजवाद और साम्राज्यवाद-विरोध के लिए प्रतिबद्ध; बांडुंग - सम्मेलन के आयोजक। सैनिक विद्रोह में तख़्तापलट हुआ।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन के संस्थापक

वामे एनक्रूमा
(1909-1972)
घाना के पहले प्रधानमंत्री (1952-66); आजादी की लड़ाई के अगुआ; अफ्रीकी एकता और समाजवाद के पक्षधर। नव-उपनिवेशवाद का विरोध किया। सैनिक षड्यंत्र में इनका तख़्तापलट हुआ।

तो इसका मतलब यह कि नव अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था बस विचार ही रहा- कभी साकार नहीं हुआ!

खुद करें, खुद सीखें

पाँच ऐसे देशों के नाम बताएँ जो दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद उपनिवेशवाद के चंगुल से मुक्त हुए।

गुटनिरपेक्षता की प्रकृति धीरे-धीरे बदली और इसमें आर्थिक मुद्दों को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। बेलग्रेड में हुए पहले सम्मेलन (1961) में आर्थिक मुद्दे ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं थे। सन् 1970 के दशक के मध्य तक आर्थिक मुद्दे प्रमुख हो उठे। इसके परिणामस्वरूप गुटनिरपेक्ष आंदोलन आर्थिक दबाव-समूह बन गया। सन् 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध तक नव अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को बनाये-चलाये रखने के प्रयास मंद पड़ गए। इसका मुख्य कारण था विकसित देशों द्वारा किया जा रहा तेज विरोध। विकसित देश एक सुर में विरोध कर रहे थे जबकि गुटनिरपेक्ष देशों को इस विरोध के बीच अपनी एकता बनाए रखने के लिए जी-तोड़ मेहनत करनी पड़ रही थी।

भारत और शीतयुद्ध

गुटनिरपेक्ष आंदोलन के नेता के रूप में शीतयुद्ध के दौर में भारत ने दो स्तरों पर अपनी भूमिका निभाई। एक स्तर पर भारत ने सजग और सचेत रूप से अपने को दोनों महाशक्तियों की खेमेबंदी से अलग रखा। दूसरे, भारत ने उपनिवेशों के चुंगल से मुक्त हुए नव-स्वतंत्र देशों के महाशक्तियों के खेमे में जाने का पुरजोर विरोध किया।

भारत की नीति न तो नकारात्मक थी और न ही निष्क्रियता की। नेहरू ने विश्व को याद दिलाया कि गुटनिरपेक्षता कोई 'पलायन' की नीति नहीं है। इसके विपरीत, भारत शीतयुद्धकालीन प्रतिद्वंदिता की जकड़ ढीली करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मामलों में सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करने के पक्ष में था। भारत ने दोनों गुटों के बीच मौजूद मतभेदों को कम करने की कोशिश की और इस तरह उसने इन मतभेदों को पूर्णव्यापी युद्ध का रूप लेने से रोका। भारत के राजनयिकों और नेताओं का उपयोग अक्सर शीतयुद्ध के दौर के प्रतिद्वंद्वियों के बीच संवाद कायम करने तथा मध्यस्थता करने के लिए हुआ; मिसाल के तौर पर 1950 के दशक के शुरुआती सालों में कोरियाई युद्ध के दौरान।

यहाँ यह याद रखना भी ज़रूरी है कि भारत ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन में शामिल अन्य सदस्यों को भी ऐसे कामों में संलग्न रखा। शीतयुद्ध के दौरान भारत ने लगातार उन क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को सक्रिय बनाये रखने की कोशिश की जो अमरीका अथवा सोवियत संघ के खेमे से नहीं जुड़े थे। नेहरू ने 'स्वतंत्र और परस्पर सहयोगी राष्ट्रों के एक सच्चे राष्ट्रकुल' के ऊपर गहरा विश्वास जताया जो शीतयुद्ध को खत्म करने में न सही, पर उसकी जकड़ ढीली करने में ही सकारात्मक भूमिका निभाये।

कुछ लोगों ने माना कि गुटनिरपेक्षता अंतर्राष्ट्रीयता का एक उदार आदर्श है लेकिन यह आदर्श भारत के वास्तविक हितों से मेल नहीं खाता। यह बात ठीक नहीं है। गुटनिरपेक्षता की नीति ने कम से कम दो तरह से भारत का प्रत्यक्ष रूप से हितसाधन किया –

- पहली बात तो यह कि गुटनिरपेक्षता के कारण भारत ऐसे अंतर्राष्ट्रीय फ़ैसले और पक्ष ले सका जिससे उसका हित सधता होता हो न कि महाशक्तियों और उनके खेमे के देशों का।
- दूसरे, भारत हमेशा इस स्थिति में रहा कि एक महाशक्ति उसके खिलाफ जाए तो वह दूसरी महाशक्ति के करीब आने की कोशिश करे। अगर भारत को महसूस हो कि महाशक्तियों में से कोई उसकी अनदेखी कर रहा है या अनुचित दबाव डाल रहा है तो वह दूसरी महाशक्ति की तरफ

WEB COPY, NOT TO BE PUBLISHED © BSTBPC

अपना रुख कर सकता था। दोनों गुटों में से कोई भी भारत को लेकर न तो बेफ़िक्र हो सकता था और न ही धौंस जमा सकता था।

भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति की कई कारणों से आलोचना की गई। हम यहाँ ऐसी दो आलोचनाओं की चर्चा करेंगे –

- आलोचकों का एक तर्क यह है कि भारत की गुटनिरपेक्षता 'सिद्धांतविहीन' है। कहा जाता है कि भारत अपने राष्ट्रीय हितों को साधने के नाम पर अक्सर महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर कोई सुनिश्चित पक्ष लेने से बचता रहा।
- आलोचकों का दूसरा तर्क है कि भारत के व्यवहार में स्थिरता नहीं रही और कई बार भारत की स्थिति विरोधाभासी रही। महाशक्तियों के खेमों में शामिल होने पर दूसरे देशों की आलोचना करने वाले भारत ने स्वयं सन् 1971 के अगस्त में सोवियत संघ के साथ आपसी मित्रता की संधि पर हस्ताक्षर किए। विदेशी पर्यवेक्षकों ने इसे भारत का सोवियत खेमे में शामिल होना माना। भारत की सरकार का दृष्टिकोण यह था कि बांग्लादेश-संकट के समय उसे राजनयिक और सैनिक सहायता की ज़रूरत थी और यह संधि उसे संयुक्त राज्य अमरीका सहित अन्य देशों से अच्छे संबंध बनाने से नहीं रोकती।

गुटनिरपेक्षता की नीति शीतयुद्ध के संदर्भ में पनपी थी। दूसरे अध्याय में हम पढ़ेंगे कि सन् 1990 के दशक के शुरुआती वर्षों में शीतयुद्ध का अंत और सोवियत संघ का विघटन हुआ। इसके साथ ही एक अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन और भारत की विदेश नीति की मूल भावना के रूप में गुटनिरपेक्षता की प्रासंगिकता तथा प्रभावकारिता में थोड़ी कमी आयी। बहरहाल, गुटनिरपेक्षता में कुछ आधारभूत मूल्य और विचार शामिल हैं। गुटनिरपेक्षता इस बात की पहचान पर टिकी है कि उपनिवेश की स्थिति से आज़ाद हुए देशों के बीच ऐतिहासिक जुड़ाव हैं और यदि ये देश साथ आ जायें तो एक सशक्त

आओ मिलजुल कर करें

चरण

- कक्षा को बराबर संख्या वाले तीन समूहों में बाँटें। प्रत्येक समूह दुनिया के इन तीन खेमों में से किसी एक की नुमाइंदगी करेगा- पूँजीवादी दुनिया, साम्यवादी दुनिया या तीसरी दुनिया।
- अध्यापक ऐसे दो संवेदनशील मुद्दों को चुनेंगे जो शीतयुद्ध के दौरान विश्व शांति और सुरक्षा को ख़तरा उत्पन्न कर चुके हों (कोरिया और वियतनाम संकट अच्छे उदाहरण हो सकते हैं)।
- प्रत्येक समूह को संबंधित मुद्दे पर 'घटना-चक्र' बनाने को कहें। उनको अपने समूह के दृष्टिकोण से एक प्रस्तुति करनी होगी। इस प्रस्तुति में घटना का कालक्रम, उसके कारण और समस्या के समाधान के लिए उनका कार्यक्रम शामिल होगा।
- प्रत्येक समूह को कक्षा के सामने 'घटना-चक्र' प्रस्तुत करने को कहें।

अध्यापकों के लिए

- छात्रों को ध्यान दिलाएँ कि किस प्रकार इन संकटों ने संबंधित देशों और शेष विश्व को प्रभावित किया। इन देशों की वर्तमान स्थिति से भी जोड़कर चर्चा करें।
- इन क्षेत्रों में शांति स्थापित करने में संयुक्त राष्ट्र और तीसरी दुनिया के नेताओं की भूमिका को रेखांकित करें (कोरिया और वियतनाम संकट में भारत की भूमिका को संदर्भ के लिए लिया जा सकता है)।
- 'शीतयुद्ध के बाद वाले दौर में हम इस प्रकार के संकटों को कैसे टाल सकते हैं' इस विषय पर वाद-विवाद शुरू करें।

सीमित परमाणु परीक्षण

सीमित परमाणु परीक्षण संधि (एलटीबीटी)

वायुमंडल, बाहरी अंतरिक्ष तथा पानी के अंदर परमाणु हथियारों के परीक्षण पर प्रतिबंध लगाने वाली इस संधि पर अमरीका, ब्रिटेन तथा सोवियत संघ ने मास्को में 5 अगस्त 1963 को हस्ताक्षर किए। यह संधि 10 अक्तूबर 1963 से प्रभावी हो गई।

परमाणु अप्रसार संधि (एनपीटी)

यह संधि केवल परमाणु शक्ति-संपन्न देशों को एटमी हथियार रखने की अनुमति देती है और बाकी देशों को ऐसे हथियार हासिल करने से रोकती है। परमाणु अप्रसार संधि के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए उन देशों को परमाणु-शक्ति से संपन्न देश माना गया जिन्होंने 1 जनवरी 1967 से पहले किसी परमाणु हथियार अथवा अन्य विस्फोटक परमाणु सामग्रियों का निर्माण और विस्फोट किया हो। इस परिभाषा के अंतर्गत पाँच देशों - अमरीका, सोवियत संघ (बाद में रूस), ब्रिटेन, फ्रांस और चीन को परमाणु-शक्ति से संपन्न माना गया। इस संधि पर एक जुलाई 1968 को वॉशिंग्टन, लंदन और मास्को में हस्ताक्षर हुए और यह संधि 5 मार्च 1970 से प्रभावी हुई। इस संधि को 1995 में अनियतकाल के लिए बढ़ा दिया गया।

सामरिक अस्त्र परिसीमन वार्ता-I (स्ट्रेटजिक आर्म्स लिमिटेशन टॉक्स - साल्ट-I)

सामरिक अस्त्र परिसीमन वार्ता का पहला चरण सन् 1969 के नवम्बर में आरंभ हुआ। सोवियत संघ के नेता लियोनेड ब्रेझनेव और अमरीका के राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने मास्को में 26 मई 1972 को निम्नलिखित समझौते पर दस्तख़त किए –

(क) परमाणु मिसाइल परिसीमन संधि (एबीएम ट्रीटी)।

(ख) सामरिक रूप से घातक हथियारों के परिसीमन के बारे में अंतरिम समझौता।

ये 3 अक्तूबर 1972 से प्रभावी हुए।

सामरिक अस्त्र परिसीमन वार्ता-II (स्ट्रेटजिक आर्म्स लिमिटेशन टॉक्स-साल्ट-II)

वार्ता का दूसरा चरण सन् 1972 के नवम्बर महीने में शुरू हुआ। अमरीकी राष्ट्रपति जिमी कार्टर और सोवियत संघ के नेता लियोनेड ब्रेझनेव ने वियना में 18 जून 1972 को सामरिक रूप से घातक हथियारों के परिसीमन से संबंधित संधि पर हस्ताक्षर किए।

सामरिक अस्त्र न्यूनीकरण संधि-I (स्ट्रेटजिक आर्म्स रिडक्शन संधि-स्टार्ट-I)

अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश (सीनियर) और सोवियत संघ के राष्ट्रपति गोर्बाचेव ने 31 जुलाई 1991 को सामरिक रूप से घातक हथियारों के परिसीमन और उनकी संख्या में कमी लाने से संबंधित संधि पर हस्ताक्षर किए।

सामरिक अस्त्र न्यूनीकरण संधि-II (स्ट्रेटजिक आर्म्स रिडक्शन संधि-स्टार्ट-II)

सामरिक रूप से घातक हथियारों को सीमित करने और उनकी संख्या में कमी करने से संबंधित इस संधि पर रूसी राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन और अमरीकी राष्ट्रपति जार्ज बुश (सीनियर) ने मास्को में 3 जनवरी 1993 को हस्ताक्षर किए।

ताकत बन सकते हैं। गुटनिरपेक्षता का आशय है कि गरीब और विश्व के बहुत छोटे देशों को भी किसी महाशक्ति का पिछलग्गू बनने की ज़रूरत नहीं है। ये देश अपनी स्वतंत्र विदेश नीति अपना सकते हैं। यह आंदोलन मौजूदा असमानताओं से निपटने के लिए एक वैकल्पिक विश्व-व्यवस्था बनाने और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को लोकतंत्रधर्मी बनाने के संकल्प पर भी टिका है। अपने आप में ये विचार बुनियादी महत्त्व के हैं और शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद भी प्रासंगिक हैं।

प्रश्नावली

1. शीतयुद्ध के बारे में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन ग़लत है?
   (क) यह संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत संघ और उनके साथी देशों के बीच की एक प्रतिस्पर्धा थी?
   (ख) यह महाशक्तियों के बीच विचारधाराओं को लेकर एक युद्ध था।
   (ग) शीतयुद्ध ने हथियारों की होड़ शुरू की।
   (घ) अमरीका और सोवियत संघ सीधे युद्ध में शामिल थे।
2. निम्न में से कौन-सा कथन गुट-निरपेक्ष आंदोलन के उद्देश्यों पर प्रकाश नहीं डालता?
   (क) उपनिवेशवाद से मुक्त हुए देशों को स्वतंत्र नीति अपनाने में समर्थ बनाना।
   (ख) किसी भी सैन्य संगठन में शामिल होने से इंकार करना।
   (ग) वैश्विक मामलों में तटस्थता की नीति अपनाना।
   (घ) वैश्विक आर्थिक असमानता की समाप्ति पर ध्यान केंद्रित करना।
3. नीचे महाशक्तियों द्वारा बनाए सैन्य संगठनों की विशेषता बताने वाले कुछ कथन दिए गए हैं। प्रत्येक कथन के सामने सही या ग़लत का चिह्न लगाएँ।
   (क) गठबंधन के सदस्य देशों को अपने भू-क्षेत्र में महाशक्तियों के सैन्य अड्डे के लिए स्थान देना ज़रूरी था।
   (ख) सदस्य देशों को विचारधारा और रणनीति दोनो स्तरों पर महाशक्ति का समर्थन करना था।
   (ग) जब कोई राष्ट्र किसी एक सदस्य-देश पर आक्रमण करता था तो इसे सभी सदस्य देशों पर आक्रमण समझा जाता था।
   (घ) महाशक्तियाँ सभी सदस्य देशों को अपने परमाणु हथियार विकसित करने में मदद करती थीं।
4. नीचे कुछ देशों की एक सूची दी गई है। प्रत्येक के सामने लिखें कि वह शीतयुद्ध के दौरान किस गुट से जुड़ा था?
   (क) पोलैंड
   (ख) फ्रांस
   (ग) जापान
   (घ) नाइजीरिया
   (ङ) उत्तरी कोरिया
   (च) श्रीलंका

प्रश्नावली

5. शीतयुद्ध से हथियारों की होड़ और हथियारों पर नियंत्रण – ये दोनों ही प्रक्रियाएँ पैदा हुईं। इन दोनों प्रक्रियाओं के क्या कारण थे?
6. महाशक्तियाँ छोटे देशों के साथ सैन्य गठबंधन क्यों रखती थीं? तीन कारण बताइए?
7. कभी-कभी कहा जाता है कि शीतयुद्ध सीधे तौर पर शक्ति के लिए संघर्ष था और इसका विचारधारा से कोई संबंध नहीं था। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अपने उत्तर के समर्थन में एक उदाहरण दें।
8. शीतयुद्ध के दौरान भारत की अमरीका और सोवियत संघ के प्रति विदेश नीति क्या थी? क्या आप मानते हैं कि इस नीति ने भारत के हितों को आगे बढ़ाया?
9. गुट-निरपेक्ष आंदोलन को तीसरी दुनिया के देशों ने तीसरे विकल्प के रूप में समझा। जब शीतयुद्ध अपने शिखर पर था तब इस विकल्प ने तीसरी दुनिया के देशों के विकास में कैसे मदद पहुँचाई?
10. 'गुट-निरपेक्ष आंदोलन अब अप्रासंगिक हो गया है'। आप इस कथन के बारे में क्या सोचते हैं। अपने उत्तर के समर्थन में तर्क प्रस्तुत करें।